अध्याय 7

समापन

मानव और साहित्य का घनिष्ठ सबध है। साहित्य मानव जीवन के गत्यात्मक सौदर्य की भावात्मक अभिव्यक्ति है। साहित्य की आलोचना या आनुसंधान में आज कल परम्परा ओर आधुनिकता को समेट लिया जाता है। मानव जीवन मे नित्य के व्यवहार मे परम्परा और आधुनिकता का जितना योगदान रहा है उतना साहित्य मं भी। परम्परा और कुछ नही है वह एक जीवत प्रक्रिया है जो अपने परिवश के साथ निरंतर जुड़ी हुई है। परम्परा स हमें पूरे अतीत का बोध होता है ऐसी बात नही। परम्परा का जीवन के परिवर्तन क साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। जो जीवन के लिए उपयुक्त नही होता उस कटा-छँटा जाता है। परम्परा के बारे मे भी यही बात है। गतिशील जीवन के सदर्भ में जो अनुपयुक्त प्रतीत होता है वह परम्परा से हट जाता है लेकिन परम्परा आग बढती ही रहती है। एक पीढी से दूसरी पीढी तक, दूसरी से तीसरी तक परम्परा का प्रवाह चलता रहता है। परम्परा के साथ आज-कल एक और शब्द का जाड़ा जाता है जिस सामान्यतया "आधुनिकता" कहा जाता है।

आधुनिकता अपने आप में कोई स्वतत्र मूल्य नही है लकिन मानव जो कुछ देखता है, परखता है, अनुभव करता है उसी को नए संदर्भ में देखना "आधुनिकता" है। यहाँ एक बात ध्यान में रखने की जरूरत है कि परम्परा और साहित्य में सूक्ष्म अंतर होकर भी वे एक दूसरे की विरोधी नहीं है बल्कि पूरक ही है। और इसी कारण चाहे साहित्यिक समीक्षा हो, अनुसंधान हो उसमें परम्परा और आधुनिकता दोनों का मिश्रण दिखाई पड़ता है। इतना सही है कि आज का बुद्धिजीवी मानव परम्परा की अपेक्षा आधुनिकता को अधिक व्यापक रूप में अपनाता है। अतः ये स्पष्ट है कि बिना परम्परा के आधुनिकता का अस्तित्व नहीं रह सकता। अर्थात् परम्परा की नींव पर ही आधुनिकता का भव्य भवन खड़ा होता है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी नाटककार जगदीशचन्द्र माथुर के सभी नाटकों मे परम्परा और आधुनिकता दोनों विद्यमान हैं। जगदीशचन्द्र माथुर ने अपने नाटकों में परम्परा को कुछ मात्रा म स्थान दिया है और आधुनिकता को अधिकतर मात्रा मे चित्रित किया है। माथुरजी के नाटकों में परम्परा और आधुनिकता का जो चित्र मिलता है वह उनके व्यक्तित्व का और भोगे हुए यथार्थ का परिपाक है।

माथुरजी के प्रमुख नाटक हैं – "कोणार्क", "शारदीया", "पहला राजा" (मौलिक), "दशरथनंदन" और "रघुकुलरीति" (नाट्यान्तर)" माथुरजी क इन नाटका में परम्परा के कुछ आयाम दिखाई पडते है – सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक आर्थिक इ.। माथुरजी परम्परा का अंधानुकरण करनेवाले नाटककार नहीं है। परम्परा के उत्तम या उल्लखनीय अंश को ही उन्होन अपने नाटका म चित्रित किया है। "कोणार्क" मे उन्होने दमित-श्रमिक शिल्पी को साकार किया है जो अपनी परपरागत शिल्पकला में ही डूबा रहता है। "पहला राजा" नाटक में आर्य-आर्यतर सघर्ष को प्राचीन वर्णव्यवस्था के धरातल पर चित्रित किया गया है। माथुरजी ने अपने नाटको मे परम्परागत चली आयी राजनीतिक कुटिलता, षाड्यंत्र, अत्याचार आदि को बड़े मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। "काणार्क" नाटक का महामात्य राजराज चालुक्य "शारदीया" का सर्जराव घाटग इस कथन के ज्वलंत उदाहरण हैं। सरस्वती के आस-पास के रगीस्तान म नहर खादकर पानी निकालने की पद्धति को परम्परागत रूप में चित्रित किया गया है। भूचण्डि की पूजा इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

"दशरथनंदन" नाटक मे रामजन्म से सीता स्वयंवर तक की घटनाओं का चित्रण और "रघुकुल रीति" में रामराज्याभिषेक की तैयारी और उसमें आनेवाल सकट तथा राम वनगमन के प्रसंग म पारम्परिक चित्रण ही मिलता है। "रघुकुल रीति" में रघु वंश की दी पुरातन आचारनीति देखने को मिलती है।

यहाँ एक ध्यान मे रखने की जरूरत है कि जगदीशचन्द्र माथुर के नाटको मे परम्परा का जो चित्र प्रस्तुत हुआ है वह प्रासंगिक है, आनुषंगिक है। केवल परम्परा को चित्रित करना उनका उद्दिष्ट नहीं है क्योंकि जगदीशचन्द्र माथुर एक सजग नाटककार या साहित्यकार हैं। प्रसाद के नाटकों में अतीत या परम्परा का जो गुणगान मिलता है, वह उनके नाटकों में नहीं है। सच्चे अर्थ में माथुरजी हिंदी के प्रयोगधर्मी नाटककार हैं। अतः उनके नाटकों में परम्परा का चित्र केवल एक उपकरण के रूप में ही आ गया है।

माथुरजी के नाटको में परम्परा की अपेक्षा आधुनिकता का चित्र फलक बड़ा विस्तृत और संयत है। उन्होन अपने नाटकों में आधुनिकता को ही अधिक स्थान दिया है। बिना परम्परा के आधुनिकता का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। अतः परंपरा की नीव पर आधुनिकता की सुंदर इमारत खड़ी की गयी है।

आधुनिकता के धरातल पर माथुरजी के दो नाटकों में मिथक की नूतन उद्‌भावनाएँ परिलक्षित होती हैं। आज का साहित्यकार पुरातन मिथका को नयी अर्थवत्ता प्रदान करने में सजग है। माथुरजी ने भी "कोणार्क" और "पहला राजा" – इन दो नाटकों मे पुरातन मिथको को नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। भारतीय सस्कृति में साहित्य, सगीत और कला को विशेष महत्त्व रहा है। जगदीशचन्द्र माथुर ने "कोणार्क" में कलाकार के पुरातन मिथक को नयी अर्थवत्ता दी है। कोणार्क के प्रसिद्ध मंदिर का महाशिल्पी विशु एक सच्चा शिल्पी है। अपनी कला क प्रति उसके मन में अपार आस्था और प्रेम है लेकिन विशु मे परिस्थितिजन्य परिवर्तन भी होता है। अपनी मौन कला साधना मे रत विशु अपने बटे की मृत्यू की वजह स प्रतिशोध का रूप धारण करता है और साथ ही आततायी अत्याचारी महामात्य चालुक्य के हाथो अपनी कला अर्पित करना नही चाहता है बल्कि जो मदिर शिल्पकला का अत्युच्च नमुना है उसीको अपने ही हाथा नष्ट कर देता है। पुरातन काल से कलाकार में साये हुए पौरूष को जाग्रत करने का कार्य नाटककारने विशु के माध्यम से किया है और कलाकार के पुरातन मिथक को नयी अर्थवत्ता प्रदान की है। धर्मपद युवाशिल्पी है। वह नये कलाकारा का प्रतिनिधि पात्र है। धर्मपद के माध्यम से नाटककार ने यह दिखाया है कि कोई कलाकार केवल कला पर जीता नहीं रह सकता। कला उसके लिए कला भी है और जीवन का आधार भी। आज का कलाकार कला को केवल साधना के रूप में नहीं देखता बल्कि उसे एक उपजीविका के साधन में भी ग्रहण करता है। धर्मपद ऐसा ही युवा शिल्पी है। यहाँ भी नाटककार ने आदर्शवादी शिल्पी की अपक्षा धर्मपद के माध्यम से एक नये शिल्पी को जन्म दिया है जो वैज्ञानिक भी है तार्किक भी है और श्रमिक के नात वेतनभाग भी है। इतना ही नहीं वह अन्याय के खिलाफ लडनेवाला और उसी में अपना बलिदान देनेवाला शहीद भी है। यहाँ कलाकार के पुराने मिथक को आधुनिक जीवन सदर्भ में ही प्रस्तुत किया है जो कि उचित है।

"पहला राजा" नाटक में नाटककार ने पृथु के पौराणिक उपाख्यान के माध्यम से स्वतंत्र भारत की राष्टीय, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक समस्याओं को अपने भोगे हुए यथार्थ के आधार पर चित्रित किया है। विशेष बात यह है कि पृथु को माथुरजी ने अपने नाटक में पहला राजा घोषित दिया है। पृथु की इन विशषाताओ को माथुरजी न एसे चित्रित किया है उनमें भारत क प्रधानमत्री नेहरू ही प्रस्तुत हो। और इस कारण नाटककार ने इस नाटक को एक "मॉडर्न एलीगोरी" – आधुनिक अन्याक्ति कहा है। आधुनिक अन्याक्ति के रूप में "पहला राजा" एक नया प्रयास है और उसम चित्रित पृथु, कवषा शुक्राचार्य आदि मुनि उर्वी, जो पुरातन प्रतीक है उन्हें आधुनिक युग सदर्भ मे रूपांतरित किया है। पुरातन मिथका की यह नूतन उद्‌भावना उल्लखनीय है। दोनों नाटक मिथकीय नूतन उद्‌भावना के सार्थ उदाहरण है।

माथुरजी के मौलिक नाटकों में उनका प्रगतिशील चिंतन गहराई के साथ दिखाई पड़ता है। नाटककार की दृष्टि पैनी है और इसी कारण सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में प्रगतिशील चिंतन की ध्वनि मुखरित हो उठी है। माथुरजी के सभी नाटक इतिहास और पुराण की पृष्ठभूमि पर लिखे गये हैं। माथुरजी अतीत की ओर जरूर आकृष्ट हुए है लेकिन अतीत या इतिहास का स्तवन करना उनका उद्दिष्ट नहीं है। उन्होंने अतीत की पृष्ठभूमि पर वर्तमान को ही चित्रित किया है। "कोणार्क" का युवाशिल्पी धर्मपद प्रगतिवादी पात्र है। इस पात्र के माध्यम से नाटककार ने कलाकारों का संगठन, कलाकारों की अपने वेतन के लिए माँग और अन्याय के खिलाफ लड़ने की क्षमता आदि को उजागर किया है। मार्क्सवाद या प्रगतीवाद का मूल आधार अर्थ है। कलाकार भी एक श्रमिक है और उसे भी अपने श्रम का परिश्रमिक मिलना चाहिए यह विचार धर्मपद के माध्यम से व्यक्त कर नाटककार ने भारतीय कलाकार को प्रगतिशील विचारक बना दिया है। लेकिन यह भी स्पष्ट है कि माथुरजी ने अपने नाटकों में कार्लमार्क्स का अंधानुकरण नहीं किया है। मार्क्सवाद से प्रभावित होकर भी भारत की मिट्टी और यहाँ के वातावरण के अनुरूप अपने प्रगतिशील चिंतन को व्यक्त किया है। धर्मनिरपेक्षिता, साम्प्रदायिक एकता, कृषि सिंचाई योजना आदि को उन्होंने "पहला राजा" नाटक में बड़ी मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है।

"कोणार्क", "शारदीया" और "पहला राजा" नाटक में माथुरजी ने लोकजीवन को भी चित्रित किया है और लोकजीवन की नयी व्याख्या प्रस्तुत की है। बुनाई की कला एक प्राचीन भारतीय कला है लेकिन नरसिंहराव के माध्यम से एक सैनिक अपनी प्रेमपूर्ति के कारण एक कलाकार बन जाता है, अर्थ प्राप्ति करता है और अपने प्रेयसी को न पाने पर भी उसकी स्मृति में अपना भावी जीवन बुनाई में ही व्यतित करता है और वह भी एक तहखाने में, ग्वालियर के कारावास के तहखाने में। भारी दृष्टि से एक कलाकार के लोकजीवन की यह नयी व्याख्या है। "पहला राजा" में चित्रित अनार्यों का जीवन का भारतीय लोकजीवन का उत्कृष्ट उदाहरण है। ये अनार्यतर लोग, दस्यु भी अपनी कड़ी मेहनत से रेगीस्तान में भी पानी पा सकते हैं और पृथु के साथ मिलकर भूमिरूपी गौ का दाहन करके आदर्श जीवन जीने की कोशिश करते हैं यह भी अनार्यों और दस्युओं के लोकजीवन की नयी व्याख्या है।

जगदीशचन्द्र माथुरजी एक सजग कलाकार हैं, प्रयोगधर्मी नाटककार हैं, इस कारण उन्होंने अपने नाटकों में शिल्प में नये-नये प्रयोग किये हैं। उन्होंने "कोणार्क", "पहला राजा" "दशरथनंदन" और "रघुकुल रीति" नाटकों में नटी और सूत्रधार के जो नव्य-प्रयोग किये है वे उनकी नाट्य -प्रतिभा के द्योतक हैं। पात्रों के चरित्र-चित्रण में प्रतीक-पात्र परिकल्पना और खंडित-व्यक्तित्व अंकन नए शिल्प की विशिष्टता है। आधुनिक अन्योक्ति के रूप में "पहला राजा" की विशिष्टता सर्वोपरि है। भाषा और संवाद के अभिनव प्रयोग, गीतों और लोगगीतों की नव्यसृष्टि नाटकों में वातावरण निर्मिति पात्रों की मनःस्थिति और प्रभावान्विति की दृष्टि से सार्थ प्रयोग है। नाटकों के

दृश्यबंध, नत्य-नाटय-शिल्प की विशिष्ट देन है। रगमच और अभिनयता की दृष्टि से उनके नाटक बेजोड़ है। प्रकाश-योजना, ध्वनि एवं संगीत की नियोजना सार्थक है।

आधुनिकता और परम्परा के संदर्भ मे जगदीशचन्द्र माथुर के नाटक स्वातत्र्योत्तर हिदी नाटकों मे अपना विशिष्ट महत्त्व रखते है। "कोणार्क" उनका कथ्य और शिल्प की दृष्टि स एक नया प्रयोग माना जाता है। स्वातत्र्योत्तर काल के नय नाटक का सूच्चपात इस नाटक से होता है ऐसा अनेक आलोचकों का मत है। माथुरजी की प्रयोगधर्मिता उनके नाटको में कथ्य और शिल्प दोनों मे है। इतिहास को केवल आधार के रूप में ग्रहण कर आधुनिक जीवन-सदर्भ को आँकने का नाटककार का प्रयास स्तुत्य है। आधुनिकता के नाम पर उन्होने अपने नाटका म अश्लिलता का या कामोत्तजक दृष्यों को कही पर भी स्थान नही दिया है। उनके नाटको की आधुनिकता में "सत्यं शिवं सुन्दर" की अभिव्यक्ति सर्वप्रमुख रही है। जहाँ युद्ध या हिंसा क प्रसंग उनके नाटकों मे दिखाई पडते हैं वे अन्याय के खिलाफ लडनेवाले लोगों की विवशता है। खून के लिए खून उनके नाटकों मे नही दिखाई पडता। माथुरजी सच्च अर्थ में भारत की मिट्टी क सुपुत्र हैं। उनके नाटकों में प्रतिबिबित परम्परा और आधुनिकता उनकी भारतीयता की ही पहचान है। माथुरजी सच्चे अर्थों में भारतीय आधुनिक नाटककार हैं। भारत उनका है और वे भारत के है।